जारी है गिद्ध को बचाने की कोशिशें

डॉ. चन्द्रशीला गुप्ता

भारत में वर्ष 2009 गिद्ध की तीनों प्रजातियों के लिए शुभ रहा है। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (बीएनएचएस) की पत्रिका हॉर्नबिल में खबर छपी है कि पहली बार पत्तल चोंच गिद्धों ने प्रजनन केन्द्रों में सफलतापूर्वक जनन किया है, सफेदपीठ गिद्ध के तीन जोड़ों ने भी अपने परिवार में वृद्धि की है, और इनके दोनों बच्चे भी अच्छी तरह से हैं। गिद्ध संरक्षण संस्था के पिंजोर (हरियाणा) व राजभाटखावा (प. बंगाल) जनन केन्द्रों से इस अच्छी खबर के अलावा एक अन्य राहत भी है कि रानी (असम) में एक और केन्द्र खुला है और चौथे केन्द्र के लिए मध्यप्रदेश में स्थान ढूंढा जा रहा है। म.प्र. में गिद्धों की संख्या 1250 आंकी गई है।

भारत में गिद्धों की 9 प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें 6 प्रजातियों में तीन पत्तल चोंच (जिप्स टेन्युइरोस्ट्रिक), सफेद पीठ (जिप्स बेंगालेन्सिस) व देशी गिद्ध (जिप्स इण्डिकस) को आईयूसीएन ने अधिक जोखिमग्रस्त प्रजातियां माना है। ये साइट्स की अनुसूची 1 में दर्ज हैं। 2 प्रजातियां सर्दियों की मेहमान हैं।

करीब 20 वर्ष पहले तक देश में गिद्धों की संख्या 4 करोड़ थी मगर आज ये मात्र 60,000 के करीब रह गए हैं। इसका पता तब चला जब सन 1997 में बीएनएचएस की टीम ने घना अभयारण्य (भरतपुर) में सफेद पीठ गिद्ध के बहुत कम संख्या वाले समूह दिखे। सन 1990 में सफेद पीठ गिद्ध विश्व के शिकारी पक्षियों में सर्वाधिक पाए जाने वाले पक्षी थे; सन 2000 में भरतपुर में कोई जनन जोड़ा नहीं बचा था। सन 1996 से 2006 के बीच गिद्ध जनसंख्या में 97 प्रतिशत गिरावट दर्ज की गई। इतनी तेज़ गिरावट किसी भी प्रजाति में नहीं हुई है।

बीएनएचएस के गिद्ध जनन केन्द्र की टीम द्वारा सन 1992 से 2007 के बीच किए गए सर्वेक्षण में यह तथ्य सामने आया कि तीनों प्रजातियों के गिद्ध कम हुए हैं लेकिन इस अवधि में सफेद पीठ एशियाई गिद्धों की संख्या 99.9 प्रतिशत कम हो गई। शेष दोनों प्रजातियों की कुल कमी 98.8 प्रतिशत रही। इस टीम ने डिक्लोफेनेक का उपयोग पूर्णतः बंद न होने पर इन तीनों प्रजातियों के नष्ट हो जाने की आशंका जताई।

सफेद पीठ गिद्ध सन 1992 में जहां लाखों में मौजूद थे वहीं 11 वर्ष में ये मात्र 11000 रह गए। देशी गिद्ध सन 2009 में 45000 रह गए और पत्तल चोंच गिद्ध मात्र 1000 बचे हैं।

गिद्ध जनसंख्या में यह महाविपत्ति भले ही भरतपुर में देखी गई हो, यूएसए की एक टीम ने इसकी मूल वजह पाकिस्तान में खोजी। इस टीम को 1600 गिद्धों के शव वहां खेतों में मिले। उनके पोस्टमार्टम से पता चला कि मौत की वजह किडनी का फेल होना तथा शरीरांगों में सूजन थी। पेट के अंदर के अंगों पर यूरिक एसिड मिला था।

दरअसल वेटरनरी उपयोग में आने वाली दर्दनिवारक औषधि डिक्लोफेनेक के अंधाधुंध उपयोग को गिद्धों की इस हालत का ज़िम्मेदार पाया गया। मृतभक्षी गिद्ध जब किसी ऐसे पशु का मांस खाते हैं जिसे अधिक मात्रा में यह औषधि दी गई थी, तब यह औषधि गिद्धों के किडनी व लीवर में जमा होने लगती है जिससे अन्य अंगों पर यूरिक एसिड जमा हो जाता है। ज़्यादातर मामलों में तो ऐसे शवों का मांस खाने के 75 घंटों के भीतर ही गिद्ध मर जाते हैं।

गिद्ध की इन तीनों संकटग्रस्त प्रजातियों का भोजन पशुओं की किडनी व लीवर है; अन्य प्रजातियां मांसपेशियां खाती हैं। यही वजह है कि वे अपेक्षाकृत सुरक्षित हैं।

बीएनएचएस द्वारा छेड़े गए अभियान के फलस्वरूप सन 2006 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने इस औषधि के वेटरनरी उपयोग पर प्रतिबंध लगाया व 3 माह की अवधि में इसे बाज़ार से पूर्णतः बाहर करने के निर्देश

दिए। इस प्रतिबंध पर सख्ती से अमल की ज़रूरत है।

आठ अन्य वैकल्पिक औषधियां उपलब्ध होने के बावजूद चिकित्सक अब इंसानों वाली डिक्लोफेनेक पशुओं के लिए लिख रहे हैं। 2008 में डिक्लोफेनेक पर 'पशु चिकित्सा के लिए नहीं' लिखना अनिवार्य कर दिया गया। इसका भी पूरी तरह पालन नहीं हो रहा है। इस तरह डिक्लोफेनेक का पर्यावरण में प्रवेश जारी है। संरक्षण अधिकारियों का मानना है कि झोलाछाप चिकित्सक ही डिक्लोफेनेक का उपयोग कर रहे हैं।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के सहयोग से बीएनएचएस देश के गिद्ध क्षेत्रों में दर्द निवारक औषधियों की पड़ताल कर रहा है। इसके बाद डिक्लोफेनेक के इस्तेमाल पर ज़मीनी प्रतिबंध की कार्य योजना बनाएंगे। औषधि उद्योग को भी संरक्षण कार्य में शामिल करने की योजना बनाई जा रही है।

मध्य भारत में किए गए एक शोध में सफेद पीठ गिद्ध के ऊतकों में अंतराकोशिकीय परजीवी मलेरिया परजीवी पाया गया। ये ऊतक डिक्लोफेनेक से मुक्त थे। दो बीमार गिद्धों में मलेरिया के लक्षण दिखाई दिए, मलेरिया के समुचित उपचार से ये स्वस्थ हो गए। ज़ाहिर है, सफेद पीठ गिद्धों के लुप्त होने की अन्य वजहें भी हैं।

गिद्धों की ज़्यादातर प्रजातियां अपना घोंसला ऊंची इमारतों, ऊंचे वृक्षों व खड़ी चट्टानों के दर्रों में बनाती हैं। इंसानी हस्तक्षेप व घटते जंगल इनके आवासों में कमी कर रहे हैं।

एक अन्य वजह इनके भोजन में कमी है, पहले बीमार या बूढ़े मवेशी जंगल में गिद्धों के भोजन के लिए छोड़ दिए जाते थे लेकिन अब इन्हें बूचड़खाने पहुंचा दिया जाता है साथ ही पशुओं के शव भी जंगल में फेंकने के बजाए हड्डियों के व्यापारियों को बेच दिए जाते हैं।

गिद्धों की विलुप्ति की चिंता में बीएनएचएस ने तीनों प्रजातियों के प्रजनन केन्द्र स्थापित करने की योजना बनाई और तीन प्रजनन केन्द्र पिंजोर (हरियाणा), राजभाटखाव (प. बंगाल) व रानी (असम) में खोले। ये केन्द्र बी.एन.एच.एस., ज़ुऑलॉजिकल सोसायटी ऑफ लंदन व राज्य शासन द्वारा संयुक्त रूप से चलाए जा रहे हैं। वैसे बीएनएचएस यहां वयस्कों की बजाए चूज़ों को ही लाकर रखता है। उसका कहना है कि चूज़ों का लालन-पालन यहीं होने से वे यहां सहज होकर प्रजनन कर पाते हैं। वयस्क अवस्था में लाने पर प्रजनन में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाती है।

जनन केन्द्रों पर गिद्धों का प्रजनन कराना व चूज़ों को पाल-पोस कर बड़ा करना बेहद मुश्किल काम है। ये स्वभाव से एकनिष्ठ प्राणी है व आजीवन जोड़ा बनाकर रहते हैं। साल में एक ही चूज़ा जनते हैं, चूज़ों को वयस्क बनने में 4 वर्ष का समय लगता है। वयस्कों को प्राकृतिक आवास में पुनर्स्थापित करना भी जोखिम भरा है क्योंकि वातावरण के डिक्लोफेनेक मुक्त होने की कोई गारंटी नहीं है। पत्तल चोंच गिद्ध का प्रजनन कराना तो सबसे मुश्किल है। प्रथम बार पिछले वर्ष 2 चूज़ों के जन्म से थोड़ी आस बनी है। तीनों जनन केन्द्रों पर 280 गिद्ध उपलब्ध हैं और तीनों प्रजातियों की जनन सफलता से संरक्षण के लिए प्रजनन केन्द्र स्थापना की नीति को समर्थन मिला है।

अब गिद्धों का भविष्य एक ओर जनन केन्द्रों और दूसरी ओर पशु चिकित्सा में डिक्लोफेनेक के पूर्ण प्रतिबंध पर निर्भर है। जनन केन्द्रों में पले वयस्क गिद्धों का डिक्लोफेनेक मुक्त वातावरण में पहुंचने के मामले में दिल्ली दूर ही नज़र आ रही है।

किडनी और लीवर खाने वाली ये तीनों गिद्ध प्रजातियां कोई शव प्राप्त होने पर पहले मांस खाने वाली प्रजातियों को मौका देती है ताकि लीवर-किडनी जैसे अंग स्वतः बाहर निकल आएं। जहां गिद्ध-भोज चल रहा होता है वहां पीछे की पंक्ति में बैठे कुछ गिद्ध अवश्य दिखेंगे। वे इन्हीं तीनों प्रजातियों के सदस्य होते हैं जो अपनी बारी का इंतज़ार करते बैठे होते हैं। वैसे पिछले 10-15 वर्षों से ऐसे दृश्य दुर्लभ हो रहे हैं।

गिद्ध कभी स्वस्थ जंतु पर हमला नहीं करते। हां, वे बीमार या घायल पशु को अवश्य मार डालते हैं। यही वजह है कि ये शिकारी पक्षी न कहलाकर सफाईकर्मी कहलाते हैं। इनकी दृष्टि व घ्राण क्षमता बड़ी तीक्ष्ण होती है। ये उड़ते-उड़ते अपेक्षाकृत ज़्यादा दूरी या ऊंचाई से अपने

शिकार को ताड़ लेते हैं और 1-2 कि.मी. दूर से भी शवों को सूंघ लेते हैं।

जब कोई साबुत शव इन्हें मिलता है तो ये उसकी मोटी खाल उधेड़ने में अक्षम होने से किसी बड़े शिकारी, जैसे जंगली कुत्ते, भेड़िए आदि का इंतज़ार करते हैं। वे थोड़ा खाकर शव को छोड़ जाते हैं, तब गिद्ध शव के समीप आते हैं। यही वजह है कि इनके भोज में एकाधिक प्रकार के प्राणी शामिल होते हैं। भरपेट खाने के बाद ये आराम से बैठकर या सोकर भोजन पचाते हैं। ये अपने शिशुओं के लिए भोजन नहीं ले जाते वरन् अपने आमाशय से उलटकर अधपचा भोजन खिलाते हैं।

गर्म क्षेत्रों के लिए गिद्ध सफाईकर्मी के रूप में बेहद ज़रूरी है क्योंकि इनके आमाशय में बेहद संक्षारक अम्ल होता है। यह हैज़ा या एन्थ्रेक्स जैसे विषाणुओं को भी नष्ट कर देता है। यह मांस अन्य सफाईकर्मी पक्षियों के लिए हानिकारक हो सकता है। ये अपने आमाशयी अम्ल का उपयोग खुद की रक्षा के लिए भी करते हैं - खतरा मंडराने पर शत्रु के सामने वमन करके डराते हैं।

गिद्ध जनसंख्या में कमी से स्वच्छता एवं हाइजीन बनाए रखना आसान नहीं रहा है क्योंकि अब पशुओं के शव या तो चूहे या फिर जंगली कुत्ते खाकर नष्ट करते हैं। इन सफाईकर्मियों से रेबीज़ के बढ़ने का खतरा है।

गिद्धों का धार्मिक व सामाजिक महत्त्व भी है। रामायण में रावण द्वारा सीताहरण कर ले जाने से रोकने में जटायु अपने प्राण न्यौछावर करता है। इस पक्षी की कमी से पारसी समाज बेहद चिंतित है। इस समाज की परंपरानुसार मृत्यु के बाद शवों को ऊंची मीनार पर रखा जाता है। गिद्ध यहां शव का मांस पूरी तरह से खाकर केवल हड्डियां शेष छोड़ते हैं। तिब्बतियों में भी यही परंपरा है। हाल ही में गिद्धों की कमी से चिंतित पारसी समुदाय ने इराक से बड़ी संख्या में गिद्ध आयात किए हैं।

नेपाल में कल्चर रेस्तरां नाम से एक प्रोजेक्ट शुरू किया गया है। एक बड़ा खुला चारागाह इसके लिए सुरक्षित रखा गया है जहां प्राकृतिक रूप से मरणासन्न या बेहद बीमार या बूढ़ी गायों को गिद्धों के भोजन के लिए रखा जाता है। ***(स्रोत फीचर्स)***